भारत में कृषि शिक्षा: बदलाव का समय

सुरेश के. सिन्हा

कृषि क्षेत्र खाद्य सुरक्षा, रोज़गार के अवसर पैदा करने और आर्थिक विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इन दिनों कृषि के विकास में आ रही गिरावट पर चिन्ता व्यक्त की जा रही है। आधुनिक कृषि ज्ञान-आधारित है। अतः इसमें सभी स्तरों की शिक्षा का, विशेषतः उच्च शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। इस लेख में कृषि विज्ञान के क्षेत्र में उच्च शिक्षा के विकास का इतिहास और विभिन्न पड़ावों की व्याख्या की गई है जिसके चलते आगे चलकर भारत में अमरीका की लैन्डग्रान्ट व्यवस्था पर आधारित कृषि विश्वविद्यालय बने। गौरतलब है कि अमरीका में इस प्रकार के शुद्ध कृषि विश्वविद्यालय नहीं हैं। इसी का परिणाम है कि कृषि विश्वविद्यालय सामान्य विश्वविद्यालयों जैसे विज्ञान, कला, वाणिज्य एवं मानवशास्त्र आदि से अलग-थलग हो गए। आज के कृषि महाविद्यालयों का ढांचा, कामकाज और उद्देश्य किसी भी प्रकार से राधाकृष्ण विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के ग्रामीण विश्वविद्यालयों के सिद्धांतों से मेल नहीं खाता है। परिणामस्वरूप इन कृषि महाविद्यालयों का ग्रामीण विकास में कोई विशेष योगदान नहीं है। हरित क्रान्ति के आरम्भ में बीजों की किस्मों में विविधता पर बहुत ध्यान दिया गया, जिससे अनाज के उत्पादन में वृद्धि तो हुई, किन्तु उपयुक्त ज्ञान के अभाव में यह कृषि के स्थायित्व व सजीवता घटाने का कारण भी बनी। चूंकि कृषि क्षेत्र भारत का एक अहम क्षेत्र है अतः कृषि महाविद्यालयों की कृषि से दूरी को खत्म करने और विविध विषयों वाले विश्वविद्यालयों से आपसी तालमेल बढ़ाने का समय आ गया है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया के विषय में इस लेख में चर्चा की गई है।

खेती का इतिहास मानव के विकास का इतिहास है। मानव ने उन पौधों और जानवरों को चुना जिनसे उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। यह किसी सोच या अनुभव से प्रेरित था या फिर इन दोनों का मिलाजुला स्वरूप था, पता नहीं। आज की मुख्य फसलों व जानवरों का इतिहास सदियों पूर्व की शिल्पकला, मूर्तिकला, चित्रकारी एवं स्मारकों में दिखाई पड़ता है। इंसान ने पिछली कई सदियों से कोई नई फसल अथवा जानवर नहीं जोड़े हैं।

आज की तरह पहले कोई औपचारिक शिक्षा नहीं थी। फिर भी पीढ़ियों से लोग पौधे लगाने, उनकी रक्षा करने और जानवरों व मवेशियों की नई-नई किस्में विकसित करने का काम करते आए हैं। हम जानते हैं कि अधिकांश प्राचीन सभ्यताएं नदी किनारे विकसित हुईं, दरअसल इसका कारण हमारे पूर्वजों का पानी के महत्व को पहचानना था। उस वक्त लोग अपने आसपास के परिसर को भलीभांति समझते थे। कृषि में शिक्षा का हमारे सीखने और क्रियान्वयन में योगदान होना चाहिए। साथ ही हमारी इस सूझबूझ और दूरदर्शिता को वैज्ञानिक आधार देना भी शिक्षा के ज़िम्मे होना चाहिए।

कृषि के औपचारिक पहलु और कृषि शिक्षा

हम इस बात को कई बार दोहरा चुके हैं कि भारत एक कृषि प्रधान देश है। आज भी देश की लगभग 70 प्रतिशत आबादी खेती पर आश्रित है। पिछली सदी में देश की आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था कृषि और कृषक के इर्द गिर्द रही। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कृषकों को संगठित करना आवश्यक था। परन्तु इसमें कृषि कोई गम्भीर सरोकार का विषय न था। अलबत्ता जब सूखे, अतिवृष्टि और बीमारियों से फसलें नष्ट हुईं और अकाल की स्थिति आ गई तो सरकार की आंखें खुलीं। इसलिए अकाल प्रबंधन का काम गृह मंत्रालय के सुपुर्द कर दिया गया।

सन् 1870 तक ब्रिटिश सरकार में कोई कृषि विभाग नहीं था। इसी वर्ष कृषि एवं वाणिज्य विभाग बनाने का प्रस्ताव आया। लेकिन इसकी वजह सूखे

और अकाल से मरे हज़ारों लोग नहीं थे। असली कारण था 1863-64 का अमरीका युद्ध जिसकी वजह से मेनचेस्टर में कपास की आपूर्ति प्रभावित हुई थी। अतः ब्रिटिश सरकार भारत से कपास की आपूर्ति की सम्भावनाओं का जायज़ा ले रही थी। ब्रिटिश सरकार को भारत में कपास की आपूर्ति की सम्भावनाएं दिखाई दीं इसलिए गर्वनर जनरल लॉर्ड मेओ ने कृषि एवं वाणिज्य विभाग की स्थापना का निवेदन किया। वैसे वे कपास उत्पादन के साथ-साथ भारतीय कृषि को बढ़ता हुआ भी देखना चाहते था। अंततः 1871 में राजस्व, कृषि और वाणिज्य विभाग को अनुमोदन मिला।

इसके पूर्व घोड़ों की देखभाल करने के लिए पशु चिकित्सकों की आवश्यकता थी क्योंकि ये घोड़े सेना द्वारा इस्तेमाल किए जाते थे।

बंगाल में पशुचिकित्सा महाविद्यालय स्थापित करने हेतु अनुशंसा में कहा गया था कि इस स्कूल में गाय को प्रमुखता दी जाएगी और घोड़े व अन्य पालतू जानवरों पर सामान्य ध्यान दिया जाएगा। परन्तु जब सन 1882 में पशु चिकित्सा व पशु व्यवस्थापन पर त्रैमासिक पत्रिका निकाली गई तो उसमें केन्द्र बिन्दु घोड़े ही थे। बैल, बकरी, ऊंट तथा अन्य कृषि उपयोगी जानवरों के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं थी। इससे यह बात भी स्पष्ट होती है कि उसमें कृषि को कोई महत्व नहीं दिया गया था।

एलन ऑक्टैवियन ह्यूम 1879 में राजस्व, कृषि एवं वाणिज्य विभाग के मुख्य अधिकारी बने। यद्यपि इसका नाम कृषि विभाग था, परन्तु इसका गठन इस तरह हुआ था कि कृषि सम्बंधी मुद्दों पर इसका सीधा व प्रभावशाली असर कभी नहीं पड़ा। अतः कृषि विभाग बनने के बावजूद भारत की कृषि एवं किसानों पर कोई विशेष असर नहीं पड़ा।

भारत में कृषि महाविद्यालय

उन्नीसवीं सदी के अन्त में सूखा पड़ा जिसकी वजह से बार-बार अकाल एवं भुखमरी की स्थिति होने लगी। सन् 1857 का स्वतंत्रता आन्दोलन और बाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना - ये दो प्रमुख राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक घटनाएं थीं

बंगाल में पशुचिकित्सा महाविद्यालय स्थापित करने हेतु अनुशंसा में कहा गया था कि इस स्कूल में गाय को प्रमुखता दी जाएगी और घोड़े व अन्य पालतू जानवरों पर सामान्य ध्यान दिया जाएगा। परन्तु जब सन 1882 में पशु चिकित्सा व पशु व्यवस्थापन पर त्रैमासिक पत्रिका निकाली गई तो उसमें केन्द्र बिन्दु घोड़े ही थे। बैल, बकरी, ऊंट तथा अन्य कृषि उपयोगी जानवरों के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं थी।

जिनकी वजह से किसानों को अपनी दुर्दशा और अपनी ज़रूरत तक के अनाज की पूर्ति न कर पाने की अपनी अक्षमता का अहसास हुआ। इससे ब्रिटिश सरकार का ध्यान देश में कृषि की स्थिति की ओर आकृष्ट हुआ।

भारतीय चिकित्सा सेवा के महानिदेशक सर जॉन मैगॉ ने 1933 में लिखा था कि ''यदि पूर्ण भारत को लिया जाए तो डिस्पेन्सरी डॉक्टरों के अनुसार भारत में 39 प्रतिशत लोग पूर्ण पोषित हैं, 41 प्रतिशत लोग कम पोषित हैं और 20 प्रतिशत लोग कुपोषित हैं। सबसे निराशाजनक चित्र बंगाल का है जहां सिर्फ 22 प्रतिशत लोग अच्छी तरह पोषित थे जबकि 31 प्रतिशत कुपोषित थे।'' अतः यह बात सामने आई कि सिर्फ सूखे अथवा अकाल के समय ही भोजन की कमी नहीं है, वरन जब अकाल नहीं भी पड़ता है, तब भी बहुत से लोगों के पास पर्याप्त अन्न नहीं होता। 1890 के भीषण अकाल ने सरकार को कृषि के महत्व का एहसास करने पर मजबूर किया और भारत में 6 कृषि महाविद्यालय और शोध संस्थान स्थापित हुए। मज़ेदार बात यह थी कि कृषि की समस्या को मिट्टी की रासायनिक स्थिति मात्र से जोड़ा गया और उसे प्राथमिकता दी गई। 6 महाविद्यालय क्रमशः पूना, कानपुर, सेबोर, नागपुर, लायलपुर और कोएम्बटूर में 1907 में स्थापित हुए। इनमें कृषि विशेषज्ञ, अर्थशास्त्री, वनस्पतिशास्त्री, कृषि रसायनयज्ञ, कीट विज्ञानी और कवक विज्ञानी आदि विशेषज्ञों को स्थान दिया गया।

सन् 1905 में पूसा (बिहार) में इम्पीरियल (आजकल इंडियन) एग्रीकल्चर रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना हुई। चूंकि इन संस्थाओं में रसायनशास्त्र,

कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना में भारत सरकार और राज्य सरकार दोनों ने अंग्रेज़ी शासन के नियमों का पालन किया और शिक्षा विशेषज्ञ और कृषि विशेषज्ञों दोनों को नज़रअंदाज़ किया।

वनस्पति शास्त्र, कीटशास्त्र, कवकशास्त्र आदि विषय थे अतः अन्य विश्वविद्यालयों में इन विषयों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी भी कृषि की समस्याओं में रुचि लेने लगे। इनमें जी.बी.पी. पाल, ए.बी. जोशी, के.सी. मेहता, एस.पी.रायचौधरी और अन्य लोगों का महत्वपूर्ण योगदान भारतीय कृषि को मिला। विज्ञान और कृषि की यह परस्परता आज भी कायम है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान की स्थापना के साथ ही गेहूं, ज्वार, बाजरा, चना, अरहर, अलसी, मक्का आदि फसलों की प्रजातियों की विविधता को लिपिबद्ध करने पर ज़ोर दिया गया। इसके अलावा पौधों की जलपोषण क्षमता, पोषक तत्व शोषित करने की क्षमता और पौधों की बीमारियों के भी दस्तावेज़ीकरण पर पूसा बिहार में विशेष ध्यान दिया गया। सबसे पहले गेहूं की स्थानीय किस्म पूसा 4 निकाली गई। इसके बाद बहुत सी अन्य किस्में विकसित हुईं। इससे अलग-अलग क्षेत्रों में फसलों पर अनुसंधान को प्रोत्साहन मिला।

सूखी खेती हेतु बॉम्बे पद्धति के नाम से प्रचलित कृषि पद्धति को अपनाया गया। परन्तु व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण फसलें जैसे कपास और वृक्षारोपण पर बहुत कम अनुसंधान हुआ। इन्हीं ज़रूरतों को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की स्थापना सन् 1929 में हुई। आई.सी.ए.आर. के उद्देश्यों से यह स्पष्ट था कि उसका सम्बंध शोध एवं प्रकाशन से होगा शिक्षा से नहीं। इसका प्राथमिक काम में भारत भर में कृषि अनुसंधान का प्रोत्साहन, मार्गदर्शन एवं संचालन करना था। इसका राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय अनुसंधान संस्थाओं पर किसी भी प्रकार का प्रशासनिक नियंत्रण नहीं था। ये तमाम उद्देश्य 1965 तक जारी रहे जब आई.सी.ए.आर. को मान्यता मिली और बी.पी. पाल इसके प्रथम महानिदेशक बने।

कृषि शिक्षा की ज़रूरत

स्वतंत्रता के तुरन्त बाद 1948-49 में भारत में विश्वविद्यालयीन शिक्षा के विकास के लिए राधाकृष्ण आयोग का गठन हुआ। इस आयोग ने महसूस किया कि चूंकि देश के अधिकांश लोग गांव में रहते हैं इसलिए देश के विकास के लिए ग्रामीण विकास ज़रूरी है। आयोग ने ग्रामीण विश्वविद्यालय बनाने का सुझाव दिया जो ग्रामीण विकास के लिए व्यावहारिक शिक्षा देंगे। लेकिन इस क्षेत्र में तरक्की तभी हुई जब उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री पंडित गोविंद वल्लभ पंत ने ग्रामीण विश्वविद्यालय की स्थापना के प्रयत्न किए। वे अमरीका में कृषि के विकास से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने दो व्यक्तियों मुख्य सचिव श्री ए.एन.झा और तराई क्षेत्र के एक किसान श्री हरपाल सिंह सिद्धू को यू.एस. भेजा। इन्होंने अमरीका के लैण्ड ग्रान्ट सिस्टम पर आधारित कृषि विश्वविद्यालयों की अनुशंसा की ।

1955 में एक अन्य पांच सदस्यीय दल अमरीका भेजा गया जिसमें सिर्फ कृषि सचिव व कृषि निदेशक थे; कोई शिक्षाविद या कृषि वैज्ञानिक नहीं। इस दल ने उत्तरप्रदेश के तराई क्षेत्र, पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा, ट्रावनकोर-कोचीन और बॉम्बे स्टेट (आनंद) में कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना की अनुशंसा की। इसमें एक भी क्षेत्र मध्य भारत अथवा सूखी कृषि वाला नहीं था। इन क्षेत्रों के चुनाव का आधार था लैण्ड ग्रान्ट सिस्टम और यही भारत में कृषि शिक्षा का प्रमुख आधार बना। *हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन इंडिया* में एम. एस. रंधावा ने ब्रिटिश राज्य (1866-91) के बारे में लिखा है कि अंग्रेज़ सरकार ने सिद्धांत रूप में यह माना था कि विशेषज्ञों को सबसे ऊपर न रखकर ज़मीनी स्तर पर रखना चाहिए ताकि उनके ज्ञान का उपयोग हो सके।

कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना में भारत सरकार और राज्य सरकार दोनों ने अंग्रेज़ी शासन के नियमों का पालन किया और शिक्षा विशेषज्ञ और कृषि विशेषज्ञों दोनों को नजरअंदाज़ किया।

इसी दौरान क्युमिंग कमेटी ने आई.ए.आर.आई. में स्नात्तोकत्तर शिक्षा और भारतीय पशु अनुसंधान संस्थान की अनुशंसा की। आई.ए.आर.आई. को

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के 1956 के एक्ट के तहत डीम्ड विश्वविद्यालय की मान्यता मिली। और तब से वहां से कृषि विज्ञान के अलग-अलग अनुभागों में एम.एससी. और पीएच.डी. की डिग्रियां दी जाने लगीं। इसके अलावा आई.ए.आर.आई. ने अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम भी विकसित किए।

इसके अलावा दिल्ली विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त एक केन्द्रीय कृषि महाविद्यालय की स्थापना भी हुई जिसमें बी.एससी. (ऑनर्स) कृषि की डिग्री हेतु शिक्षण दिया जाता है। हालांकि केन्द्रीय कॉलेज में ऐसे राज्यों के विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाता था जहां कृषि विद्यालय नहीं थे, लेकिन अगर यह कॉलेज चलता रहता तो केन्द्र शासित प्रदेशों, उत्तर-पूर्व और अन्य क्षेत्रों के विद्यार्थियों को भी इससे लाभ पहुंचता। परन्तु 1959 में आई.ए.आर.आई. के डीम्ड विश्वविद्यालय बनने के बाद किन्हीं कारणों से केन्द्रीय महाविद्यालय बन्द कर दिया गया। यू.एस.ए. की एक अनपरखी व्यवस्था के पक्ष में लिया गया यह निर्णय हमारे लिए एक बड़ा नुकसान था।

ऐसे में हमारे मन में निम्न प्रश्न उठ सकते हैं।

(1) अमरीका में शिक्षा की लैण्ड ग्राण्ट पद्धति क्या है?

(2) लैण्ड ग्राण्ट महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में अपनी स्थापना से अब तक किस तरह के बदलाव आए हैं?

बदलते परिवेश में शोध

अमरीका में लैण्ड ग्राण्ट कॉलेज/विश्वविद्यालय ने न केवल बदलती ज़रूरतों के अनुसार अपने कार्यक्रम बदले बल्कि इन ज़रूरतों का पूर्वानुमान भी लगाया। इसलिए लैण्ड ग्राण्ट प्रणाली ने सिर्फ कृषि शिक्षा को ही महत्व नहीं दिया। 1997 में इन कॉलेजों ने बायोटेक्नोलॉजी, माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक्स, टेलीकम्युनिकेशन, सिविल एअर क्राफ्ट बनाना, नए पदार्थों का विज्ञान, कम्प्युटर, रोबोटिक्स आदि विषयों पर भी शिक्षा को उपयोगी माना। यह सम्भवत: इस बात को प्रदर्शित करता है कि यू.एस. में कृषि मुख्य मुद्दा नहीं है। इसलिए शिक्षण संस्थान ऐसी शिक्षा देते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा में यू.एस. की स्थिति

लैण्ड ग्राण्ट कॉलेज

युनाइटेड स्टेट्स में सन् 1862 में एक कानून बना जिसके तहत लैण्ड ग्राण्ट कॉलेज और विश्वविद्यालयों के उद्देश्य थे' ...कम से कम एक ऐसे कॉलेज की स्थापना, सहायता और देखरेख जिसमें अन्य वैज्ञानिक एवं क्लासिकल विषयों को खारिज किए बगैर और सैन्य शिक्षा पद्धति को शामिल करके, इन तमाम विषयों को कृषि व यांत्रिक कला से जोड़ते हुए पढ़ाया जाए। इस बात का ध्यान रखा जाए कि उपरोक्त शिक्षा राज्यों के कानून के अनुसार हो और उसका उद्देश्य उद्योगों एवं अन्य व्यावसायिक क्षेत्रों की व्यावहारिक शिक्षा को प्रोत्साहित करना हो।' 1862 के कानून को 1890 में संशोधित किया गया। इस कानून से जुड़ी मुख्य बातें हैं:

उस वक्त हार्वर्ड जैसी उच्च शिक्षा की कुछ संस्थाएं उच्चवर्गीय मानी जाती थीं और जिनका कृषि, उद्योग और सैन्य शिक्षा जैसी उपयोगी शिक्षा व अनुसंधान से कोई लेना-देना नहीं था।

फेडरल सरकार ने कानून के ज़रिए करीब 30 हज़ार एकड़ ज़मीन हर राज्य को महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना करने के लिए दी और इसलिए लैण्ड ग्राण्ट सिस्टम प्रचलित हुआ। ज़मीन के रूप में पूंजी के स्थानान्तरण के अलावा इस तंत्र में 50 प्रतिशत तक आर्थिक सहायता प्राप्त करने का भी प्रावधान था। इस तरह फेडरल सरकार ने राज्यों में उच्च शिक्षा के केन्द्र स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनमें से कुछ विश्वविद्यालय जैसे मिशिगन स्टेट युनिवर्सिटी, वॉशिंग्टन स्टेट युनिवर्सिटी, टेक्सास स्टेट युनिवर्सिटी, केन्सास स्टेट युनिवर्सिटी आदि विज्ञान, कृषि, इंजीनियरिंग, साहित्य एवं कला शिक्षा के लिए प्रख्यात हैं। इस तरह अमरीकी लैण्ड ग्राण्ट प्रणाली ने विज्ञान एवं कला के किसी भी क्षेत्र में मेधा के विकास को प्रतिबंधित अथवा नियंत्रित नहीं किया, और मात्र कृषि का विकास तो इसका उद्देश्य कतई नहीं था। इस सिद्धान्त का मुख्य तत्व समय की आवश्यकतानुसार विकास करना था।

लैण्ड ग्राण्ट सिस्टम के महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों का एसोसिएशन 1998 में पुन: मिला और इसकी भावी भूमिका पर विचार किया। 1897, 1997 और 2027 वर्ष के लिए उद्देश्य निर्धारण इस तंत्र की दूरदर्शिता प्रदर्शित करता है।

मज़बूत करे और जिसका जीवन की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़े। ये नई तकनीकें आने वाले समय में नई कम्पनियों अथवा उद्योगों में विकास का आधार बनेंगी। इसी के हिसाब से 2027 में पूर्वानुमानित तकनीकें जैवअनुकृति, जैविक पदार्थ, बायोइलेक्ट्रॉनिक्स बायोकम्प्युटिंग, सूक्ष्म टेक्नोलॉजी इत्यादि पर आधारित होंगी।

भारत में शिक्षा की लैण्ड ग्राण्ट प्रणाली की स्थिति क्या है? हमें हमेशा कृषि उत्पादन की चिन्ता रही है और विश्वविद्यालयों में कभी भी शिक्षा का सम्बंध बड़े, मध्यम अथवा छोटे उद्योगों से नहीं जोड़ा गया है। हमने इस देश में एक पृथकता की नीति अपनाई जिसका विज्ञान, इंजीनियरिंग, कला एवं वाणिज्य जैसे अन्य क्षेत्रों से बहुत कम सम्पर्क बना। ऐसा कोई विश्वविद्यालय नहीं जिसमें पादप रसायन और रसायन उद्योग को बढ़ावा देने वाले विशेष यौगिकों के संश्लेषण को समझने में मदद मिले। आज भी हमें विभिन्न किस्म के अमरूदों में फसल के पहले और बाद के कायिक बदलावों और जैवरसायनों का पता नहीं रहता। त्रुटि सिर्फ कृषि विश्वविद्यालयों में ही नहीं है, दूसरे विश्वविद्यालयों ने भी अपने आसपास देखना छोड़ दिया है। अतः एक तरह से हमने पृथकता की नीति अपनाई जिसने कृषि विश्वविद्यालयों को भी प्रभावित किया। मसलन ऐसे छात्र कम ही हैं जिन्होंने पौध संवर्धन और जिनेटिक्स में स्नातकोत्तर किया और हॉर्टिकल्चर में दाखिला लिया अथवा मृदा विज्ञान के किसी विद्यार्थी का कृषि-विज्ञान में पीएच.डी. करना कम ही नज़र आता है। हम दो अलग-अलग परन्तु परस्पर सम्बंधित विषयों मे शोध की बात अथवा अपेक्षा उन लोगों से करते हैं जिन्होंने एक ही विषय में डिग्री प्राप्त की है एवं उसके प्रति समर्पित है।

हमने लैण्ड ग्राण्ट प्रणाली से क्या लिया?

हमने लैण्ड ग्राण्ट सिस्टम से जो कुछ थोड़ा बहुत लिया है वह प्रशासनिक व आर्थिक हिस्सा ही है। राज्य सरकार ने करीब 2000 एकड़ भूमि विश्वविद्यालयों को दी जो इनकी आर्थिक सहायता थी। कुछ जगहों पर इससे ज़्यादा भी ज़मीन दी गई ताकि वे बीज उत्पादन करें एवं बांटे। अधिकांश मामलों में यह व्यवस्था सफल नहीं हुई क्योंकि इसे एक व्यावसायिक उद्यम के रूप में अपनाया नहीं गया था। अतः विश्वविद्यालय द्वारा उत्पादित बीज को राज्य अथवा राष्ट्रीय बीज निगम द्वारा आगे बढ़ाना पड़ा। विश्वविद्यालय और बीज निगम कोई पुख्ता वाणिज्य और शोध सम्बंध भी नहीं स्थापित कर पाए। इस तरह विश्वविद्यालयों की सरकार पर आर्थिक निर्भरता कायम रही और विश्वविद्यालयों में राजनैतिक हस्तक्षेप अपरिहार्य हो गया। कई जगहों पर कृषि सचिव और कृषि मंत्री विश्वविद्यालयों के मुख्य अधिकारी बन गए जबकि उन्हें शिक्षा अथवा कृषि की कोई समझ नहीं थी।

त्रुटि सिर्फ कृषि विश्वविद्यालयों में ही नहीं है, दूसरे विश्वविद्यालयों ने भी अपने आसपास देखना छोड़ दिया है। अतः एक तरह से हमने पृथकता की नीति अपनाई जिसने कृषि विश्वविद्यालयों को भी प्रभावित किया।

हर राज्य सरकार के पास कृषि विभाग होता है। अतः सिर्फ अनुसंधान एवं उसका प्रचार-प्रसार ही विश्वविद्यालय द्वारा होता है जिससे किसान के पास खेती के सम्पूर्ण विकास की बात नहीं पहुंच पाती है। व्यावसायीकरण की दृष्टि से क्षेत्र के लोगों के लिए बहुत ही कम तकनीकों का विकास कर उन तक पहुंचाया गया है। आज भी लौहार, बढ़ई और अन्य कारीगर अपने पुराने औज़ारों का ही उपयोग कर रहे हैं। यदि उनमें थोड़ा बहुत सुधार हुआ है तो वह उन्होंने स्वयं किया है। फसल अवशेषों से बनी छतें आज भी आग की चपेट में आ जाती हैं जबकि कृषि विश्वविद्यालयों को बने चालीस वर्ष हो चुके हैं। एक संशोधित बैलगाड़ी ग्रामीण भारत की अहम ज़रूरत है लेकिन किसी भी कृषि विश्वविद्यालय ने इस क्षेत्र में पहल नहीं की है। विश्वविद्यालयों के योगदान का मूल्यांकन उस क्षेत्र के सम्पूर्ण विकास से होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ होता तो गांववालों का गांवों से शहरों की तरफ इतना पलायन न हुआ होता।

आज समय आ गया है जब हम लैण्ड ग्राण्ट प्रणाली के योगदान का विश्लेषण करें। बेहतर होगा इन विश्वविद्यालयों का उद्देश्य सिर्फ खेती का विकास ही न हो वरन इनमें ऐसे तकनीकी विकास भी

शामिल हों जो गांवों के आर्थिक सशक्तिकरण, परिवहन, ऊर्जा एवं संग्रहण क्षमता के विकास आदि के लिए ज़रूरी हैं।

चलिए अब राधाकृष्ण आयोग की दृष्टि से कृषि विश्वविद्यालयों के कार्य का विश्लेषण करते हैं। कल्पना ऐसे गांव की थी जो आर्थिक रूप से समृद्ध हो, उसके उत्पादन का तरीका पिछड़ा हुआ न हो, उसे आधुनिक तकनीकी विकास का पूरा लाभ मिले। कल्पना थी कि कुशल कृषि पद्धतियों से की गई लघु स्तर की खेती में कम लोगों के साथ बहुत ज़्यादा उपज पाई जा सकेगी। इससे ग्रामीण जनता के लिए कृषि के अलावा छोटे-छोटे उद्योगों के माध्यम से रोज़गार उपलब्ध हो सकेगा। हर ग्राम समूह में बड़े स्तर पर आर्थिक गतिविधियां होंगी। देश के उद्योगों का बड़ा हिस्सा गांवों व छोटे-छोटे शहरों में स्थापित होगा। हर गांव में साल भर यातायात की व्यवस्था होगी एवं उसे वर्ष भर बिजली की आपूर्ति होगी, हर गांव के पास जल की आपूर्ति व सीवर लाइन होगी।

राधाकृष्ण आयोग में इस बात का भी ध्यान रखा गया था कि अलग-अलग पेशे के विकास में विश्वविद्यालय महत्वपूर्ण योगदान दे। जैसे जल नियंत्रण इंजीनियरिंग, मृदा सुधार इंजीनियरिंग, ताप नियंत्रण इंजीनियरिंग, समुद्री उत्पादन तकनीक, खनिज प्रोसेसिंग, ग्रामीण जल प्रशासन, ग्रामीण समाज सुधार, ग्रामीण ज़मीन एवं ग्राम योजना, सामाजिक इंजीनियरिंग, ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्रामीण कला एवं ग्रामीण चिकित्सा सेवा आदि। उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट है कि मौजूदा कृषि विश्वविद्यालयों के पास ग्रामीण भारत को बदलने की अपार सम्भावना थी बशर्ते उन्होंने ग्रामीण विश्वविद्यालय के बुनियादी सिद्धांत पर अमल किया होता।

कृषि शिक्षा, शोध व संसाधन प्रबंधन

ग्रामीण विश्वविद्यालय की शुरुआती संकल्पना सम्पूर्ण ग्रामीण विकास की थी। वह सिर्फ फसल उत्पादन तक सीमित नहीं थी। किन्तु स्वतंत्रता के बाद अधिक फसल उत्पादन विशेषत: अनाज उत्पादन पर अधिक दबाव आया। इसका नतीजा यह हुआ कि प्राकृतिक संसाधनों, मानव बल एवं आर्थिक आधारों का व्यवस्थापन ठीक से नहीं हो सका।

आई.सी.ए.आर ने न अनुसंधान में मदद की, न शिक्षा में। यदि कुछ किया तो सिर्फ इतना कि कृषि विश्वविद्यालयों को विज्ञान संगठनों से अलग-थलग कर दिया।

आई.सी.ए.आर. का पुनर्गठन

पुनर्गठन के बाद आई.सी.ए.आर. देश के कृषि अनुसंधान हेतु जवाबदेह हो गया। कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना यूजीसी एक्ट के अन्तर्गत हुई और आई.सी.ए.आर. का इसमें कोई योगदान नहीं रहा। फिर भी आई.सी.ए.आर. और कृषि विश्वविद्यालयों का सम्बंध बना रहा। यह सम्बंध आई.सी.ए.आर. द्वारा विश्वविद्यालयों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता पर ही आधारित नहीं है। वेतन या अन्य लाभों के मामले में कृषि विश्वविद्यालय दूसरे विश्वविद्यालयों के ज़्यादा नज़दीक रहे। नतीजतन आई.सी.ए.आर. जो मूलत: एक अनुसंधान संस्था है किसी आम विश्वविद्यालय की तरह कार्य करता है जहां पदोन्नति का आधार अनुसंधान न होकर नौकरी का कार्यकाल होता है। इसलिए शोध में किसी प्रकार की स्पर्धा नहीं दिखाई पड़ती है। इस तरह आई.सी.ए.आर ने न अनुसंधान में मदद की, न शिक्षा में। यदि कुछ किया तो सिर्फ इतना कि कृषि विश्वविद्यालयों को विज्ञान संगठनों से अलग-थलग कर दिया।

कृषि विश्वविद्यालय एवं ग्रामीण सेवा क्षेत्र

कृषि व्यवस्थापन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी कृषि शोध, शिक्षा एवं उसके प्रचार-प्रसार के बीच एकीकरण की ज़रूरत को पहचानना। सभी कृषि विश्वविद्यालयों में एक विस्तार विभाग होता है। सभी राज्यों में कृषि विभाग कृषि विस्तार सेवा के लिए ज़िम्मेदार हैं अत: हम पूछ सकते हैं कि:

1) राज्य कृषि विभाग व विश्वविद्यालय विभाग के बीच क्या सम्बंध या तालमेल है।

2) किसी भी तकनीक के गांवों में स्थानांतरण की सफलता अथवा असफलता की जवाबदारी किसकी होगी - कृषि विश्वविद्यालय के विस्तार

विभाग की अथवा कृषि विभाग की?

3) कृषि विस्तार की ज़रूरत और उसकी अवधारणा में पिछले तीन दशकों में क्या बदलाव आया है?

विश्वविद्यालयों का योगदान

स्वतंत्रता पूर्व देश में समाज शास्त्र व विज्ञान के कई महत्वपूर्ण विश्वविद्यालय थे। इनमें से बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय जैसे कुछ में तो बढ़िया कृषि विद्यालय था। कला, मानवशास्त्र एवं विज्ञान के सभी विश्वविद्यालयों में वनस्पतिशास्त्र एवं जन्तुशास्त्र के विभाग थे। जीव विज्ञान विभाग के कुछ विद्वान वैज्ञानिकों ने आकारिकी, वर्गीकरण एवं शरीरक्रिया विज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिए। लेकिन शायद वित्त के अभाव में इन विभागों में कोई शोध कार्यक्रम नहीं हो सके। कुछ कारणों से इन विभागों में जिनेटिक्स, फिज़ीओलॉजी, जैवरसायन एवं सांख्यिकी आदि विषयों पर विशेषज्ञता की कमी रही जो शोध के लिए महत्वपूर्ण थे। कई प्रोफेसरों में विदेशों में समतापीय पौधों एवं जानवरों पर काम किया। बहुत से इन्हीं विषयों पर काम करते रहे और अपने आसपास के जानवरों पर उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। इस दौरान हालांकि महत्वपूर्ण सिद्धान्त निकले लेकिन इनमें खाद्य फसलें व उपयोगी जानवर न थे। पौध-रोगों व कीटशास्त्र में कुछ महत्वपूर्ण काम ज़रूर हुआ। दालों के विज्ञान जैसे दलहनों, तिलहनों एवं आम, नींबू, संतरा, अमरूद जैसे फलों आदि पर बहुत कम काम हुआ। यह कहना अनुचित न होगा कि बहुत से विभाग पादपविज्ञान की बजाय वनस्पतिशास्त्र शब्द से ज़्यादा जुड़े रहे। नतीजतन कृषि विश्वविद्यालयों में इन विश्वविद्यालयों के बहुत कम विद्यार्थियों व शिक्षकों ने रुचि ली। जबकि कुछ विभाग जैसे अर्थशास्त्र ने बहुत तेज़ी से प्रगति की और कृषि के अर्थशास्त्र में काफी योगदान भी दिया। भारतीय वैज्ञानिकों ने पौधों के प्रजनन पर बहुत अच्छा काम किया परन्तु इसे तकनीक के रूप में बदलने और कृषि शोध संस्थाओं से व्यवहार बढ़ाने का उत्साह उनमें नहीं था।

इस संदर्भ में हम ब्रिटेन, कनाडा, यू.एस. ऑस्ट्रेलिया आदि के विश्वविद्यालयों से सीख ले सकते हैं जहां विज्ञान, कला, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कृषि जैसे सभी संकाय सम्मिलित रहते हैं। विद्यार्थी किसी भी विभाग से शिक्षा लेकर अपना अभ्यासक्रम पूरा कर सकते हैं। ऐसे विद्यार्थी जो बी.एससी., एस.एससी. कर रहे हैं वे इतिहास के पाठ्यक्रम कर सकते हैं जबकि कृषि में पीएच.डी. कर रहे विद्यार्थी आणविक जीवविज्ञान पढ़ सकते हैं।

हम आज थर्मोडायनेमिक्स के ज्ञान के बिना मृदा शास्त्र के विकास की अपेक्षा करते हैं। आने वाले समय में कला, मानविकी व विज्ञान विश्वविद्यालयों और कृषि विश्वविद्यालयों का आपसी सामंजस्य कैसे होता है यह एक बहुत बड़ी चुनौती है।

समय के साथ-साथ कला व मानविकी विश्वविद्यालयों में जीवविज्ञान विभाग अलग-थलग पड़ता गया। विश्वविद्यालयों ने जिनेटिक्स विशेषज्ञ, बायोकेमिस्ट, आणविक जीवविज्ञानी को अपने शिक्षक समूह में लेने से खास तौर पर कृषि संस्थाओं से लेने से इंकार कर दिया। अतः कला, मानविकी, विज्ञान विश्वविद्यालयों में शोध की दिशा कभी निश्चित नहीं हो सकी।

अतः आने वाले समय में कला, मानविकी व विज्ञान विश्वविद्यालयों और कृषि विश्वविद्यालयों का आपसी सामंजस्य कैसे होता है, यह एक बड़ी चुनौती है। यह बात सिर्फ जीव विज्ञान ही नहीं बल्कि रसायन विज्ञान, भौतिकी, गणित आदि क्षेत्रों पर भी लागू होती है जो कृषि के लिए महत्वपूर्ण हैं। हम आज थर्मोडायनेमिक्स के ज्ञान के बिना मृदा शास्त्र के विकास की अपेक्षा करते हैं, इसी तरह भूगोल और मानवशास्त्र के ज्ञान के बिना पर्यावरण व कृषि के विकास की बात करते हैं। अब समय आ गया है जब हम बुनियादी व उपयोगी शिक्षा में सामंजस्य लाएं।

आज की ज़रूरत क्या है?

आर्थिक योगदान में कमी आने के बावजूद आज भी कृषि समाज का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। कृषि भारत में और पूरी दुनिया में अन्न की आपूर्ति का मुख्य स्रोत है। अतः कृषि के विकास का अर्थ ग्रामीण समाज का विकास, ग्रामीण पर्यावरण का विकास और

ग्रामीण जीवन का विकास होगा। इसमें ग्रामीण आवास व्यवस्था, ग्रामीण स्वच्छता, स्वास्थ्य सुरक्षा, ऊर्जा आपूर्ति, जल आपूर्ति, सड़कें, दूरसंचार के साधन, ग्रामोद्योग, कला, साहित्य आदि शामिल हैं। आज यदि हम भारत में पंचायती राज की बात करते हैं तब यह भी आवश्यक है कि गांव में लोगों को इसके नियम कानून और व्यवस्थापन की जानकारी हो। इसलिए जब हम सिर्फ कृषि की बात करते हैं तो हम विद्यार्थियों को समाज विकास के पहलू से वंचित कर रहे होते हैं। हम कृषि उत्पादन में वृद्धि को स्वास्थ्य शिक्षा और ग्रामीण आवास एवं स्वच्छता की शिक्षा के साथ क्यों नहीं जोड़ सकते? विश्वविद्यालय को ऐसा शिक्षा संस्थान बनाना चाहिए जिसमें विद्यार्थी शिक्षण के साथ-साथ आय कमाने के भी योग्य बने।

अत: अब समय आ गया है कि कृषि विश्वविद्यालयीन शिक्षा का एक अभिन्न अंग बने और विद्यार्थियों एवं शिक्षकों की दृष्टि ज़्यादा विस्तृत बने। एक व्यक्ति जो जीव विज्ञान का विद्यार्थी रहा हो उसके सामाज वैज्ञानिक बनने की सम्भावनाएं होनी चाहिए। शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों को संकुचित दायरों से बाहर निकलना चाहिए एवं उदार दृष्टिकोण को स्थान देना चाहिए साथ ही विशिष्ट क्षेत्र की पकड़ होना भी ज़रूरी है। सी. सुब्रमण्यम ने कहा है ''अब यह समझने का समय आ गया है कि कृषि विज्ञान अलग-थलग विकसित नहीं हो सकता है, उसे विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के साथ तालमेल बैठाना होगा। जैसे कृषि विज्ञान पर गणित का प्रभाव है, भौतिकी, जीव विज्ञान का प्रभाव है। इसलिए मेरा सुझाव है कि कृषि विज्ञान व कृषि विश्वविद्यालयों को सामान्य विज्ञान, सामान्य विश्वविद्यालयों और अन्य क्षेत्रों के अनुसंधानों से जोड़ने की ज़रूरत है।

इस संदर्भ में हम ब्रिटेन, कनाडा, यू.एस. ऑस्ट्रेलिया आदि के विश्वविद्यालयों से सीख ले सकते हैं जहां विज्ञान, कला, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कृषि जैसे सभी संकाय सम्मिलित रहते हैं। विद्यार्थी किसी भी विभाग से शिक्षा लेकर अपना अभ्यासक्रम पूरा कर सकते हैं। ऐसे विद्यार्थी जो बी.एससी., एस.एससी. कर रहे हैं वे इतिहास के पाठ्यक्रम कर सकते हैं जबकि कृषि में पीएच.डी. कर रहे विद्यार्थी आणविक जीवविज्ञान पढ़ सकते हैं। इस तरह ज्ञान के क्षेत्र का विस्तार होगा। हो सकता है बाद में कोई विश्वविद्यालय चिकित्साशास्त्र में तो कोई कृषिशास्त्र में प्रसिद्ध हो जाए। मुख्य ज़ोर ज्ञानवर्धन व उसकी साझेदारी में होना चाहिए। ***(स्रोत विशेष फीचर्स)***

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

वार्षिक सदस्यता शुल्क 150 रुपए

सदस्यता शुल्क कृपया एकलव्य, भोपाल के नाम बने ड्राफ्ट या मनीआर्डर से एकलव्य, ई-7/एच.आई.जी. 453, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462 016 के पते पर भेजें।